प्रायश्चित

अमृतलाल नागर

प्रायश्चित

जीवन वाटिका का वसंत, विचारों का अंधड़, भूलों का पर्वत, और ठोकरों का समूह है यौवन। इसी अवस्था में मनुष्य त्यागी, सदाचारी, देश-भक्त एवं समाज-भक्त भी

बनते हैं, तथा अपने खून के जोश में वह काम कर दिखाते हैं, जिससे कि उनका नाम संसार के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिख दिया जाता है, तथा इसी आयु में मनुष्य विलासी, लोलुपी और व्यभिचारी भी बन जाता है, और इस प्रकार अपने जीवन को दो कौड़ी का बनाकर पतन के खड्ड में गिर जाता है, अंत में पछताता है, प्रायश्चित करता है, परंतु प्रत्यंचा से निकाला हुआ बाण फिर वापस नहीं लौटता, खोई हुई सच्ची शांति फिर कहीं नहीं मिलती।

मणिधर सुंदर युवक था। उसके पर्स (जेब) में पैसा था और पास में था नवीन उमंगों से पूरित हृदय। वह भोला-भाला सुशील युवक था। बेचारा सीधे मार्ग पर जा रहा था, यारों ने भटका दिया - दीन को पथ-हीन कर दिया। उसे नित्य-प्रति कोठों की सैर कराई, नई-नई परियों की बाँकी झाँकी दिखाई। उसके उच्चविचारों का उसकी महत्वकाक्षांओं का अत्यंत निर्दयता के साथ गला घोंट डाला गया। बनावटी रूप के बाजार ने बेचारे मणिधर को भरमा दिया। पिता से पैसा माँगता था वह, अनाथालयों में चंदा देने के बहाने और उसे आँखें बंद कर बहाता था, गंदी नालियों में, पाप की सरिता में, घृणित वेश्यालयों में।

ऐसी निराली थी उसकी लीला। पंडित जी वृद्ध थे। अनेक कन्याओं के शिक्षक थे। वात्सल्य प्रेम के अवतार थे। किसी भी बालिका के घर खाली हाथ न जाते थे। मिठाई, फल, किताब, नोटबुक आदि कुछ न कुछ ले कर ही जाते थे तथा नित्यप्रति पाठ सुनकर प्रत्येक को पारितोषिक प्रदान करते थे। बालिकाएँ भी उनसे अत्यंत हिल-मिल गई थीं। उनके संरक्षकगण भी पंडित जी की वात्सल्यता देख गदगद हो जाते थे। घरवालों के बाद पंडित जी ही अपनी छात्राओं के निरीक्षक थे, संरक्षक थे। बालिकाएँ इनके घर जातीं, हारमोनियम बजाती, गाती, हँसती, खेलती, कूदती थीं। पंडितजी इससे गदगद हो जाते थे तथा बाहरवालों से प्रेमाश्रु ढरकाते हुआ कहा करते, "इन्हीं लड़कियों के कारण मेरा बुढ़ापा कटता चला जा रहा है। अन्यथा अकेले तो इस संसार में मेरा एक दिवस भी काटना भारी पड़ जाता।" समस्त संसार पंडितजी की एक मुँह से प्रशंसा करता था।

बाहरवालों को इस प्रकार ठाट दिखाकर पंडितजी दूसरे ही प्रकार का खेल खेला करते थे। वह अपनी नवयौवना सुंदर छात्राओं को अन्य विषयों के साथ-साथ प्रेम का पाठ भी पढ़ाया करते थे, परंतु वह प्रेम, विशुद्ध प्रेम नहीं, वरन प्रेम की आड़ में भोगलिप्सा की शिक्षा थी, सतीत्व विक्रय का पाठ था। काम-वासना का पाठ पढ़ाकर भोली-भाली बालिकाओं का जीवन नष्ट कराकर दलाली खाने की चाल थी, टट्टी की आड़ में शिकार खेला जाता था। पंडितजी के आस-पास युनिवर्सिटी तथा कालेज के छात्र इस

प्रकार भिनभिनाया करते थे, जिस प्रकार कि गुड़ के आस पास मक्खियाँ। विचित्र थे पंडितजी और अद्‌भुत थी उनकी माया।

रायबहादुर डॉ. शंकरलाल अग्निहोत्री का स्थान समाज में बहुत ऊँचा था। सभा-सोसाइटी के हाकिम-हुक्काम में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे वह। उनके थी एक कन्या - मुक्ता। वह हजारों में एक थी - सुंदरता और सुशीलता दोनों में। दुर्भाग्यवश वृद्‌ध पंडितजी उसे पढ़ाने के लिए नियुक्त किए गए। भोली-भाली बालिका अपने आदर्श को भूलने लगी। पंडित जी ने उसके निर्मल हृदय में अपने कुत्सित महामंत्र का बीजारोपण कर दिया था। अन्य युवती छात्राओं की भाँति मुक्ता भी पंडित जी के यहाँ 'हारमोनियम' सीखने जाने लगी।

पंडितजी मुक्ता के रूप लावण्य को किराए पर उठाने के लिए कोई मनचला पैसे वाला ढूँढ़ने लगे। अंत में मणिधर को आपने अपना पात्र चुन लिया। नई-नई कलियों की खोज में भटकने वाला मिलिंद इस अपूर्व कली का मदपान करने के लिए आकुलित हो उठा। इस अवसर पर पंडितजी की मुट्‌ठी गर्म हो गई। दूसरे ही दिवस मणिधर को पंडित जी के यहाँ जाना था। वह संध्या अत्यंत ही रमणीक थी। मणि ने उसे बड़ी प्रतीक्षा करने के पश्चात पाया था। आज वह अत्यंत प्रसन्न था। आज उसे पंडितजी के यहाँ जाना था। ...वह लंबे-लंबे पग रखता हुआ चला जा रहा था पंडितजी के पापालय की ओर। आज उसे रुपयों की वेदी पर वासना-देवी को प्रसन्न करने के लिए बलि चढ़ानी थी।

मुक्ता पंडितजी के यहाँ बैठी हारमोनियम पर उँगलियाँ नचा रही थी, और पंडितजी उसे पुलकित नेत्रों से निहार रहे थे। वह बाजा बजाने में व्यस्त थी। साहसा मणिधर के आ जाने से हारमोनियम बंद हो गया। लजीली मुक्ता कुर्सी छोड़कर एक ओर खड़ी हो गई। पंडितजी ने कितना ही समझाया, "बेटी! इनसे लज्जा न कर, यह तो अपने ही हैं। जा, बजा, बाजा बजा। अभ्यागत सज्जन के स्वागत में एक गीत गा।" परंतु मुक्ता को अभी लज्जा ने न छोड़ा था। वह अपने स्थान पर अविचल खड़ी थी, उसके सुकोमल मनोहारी गाल लज्जावश 'अंगूरी' की भाँति लाल हो रहे थे, अलकें आ-आकर उसका एक मधुर चुंबन लेने की चेष्टा कर रही थीं। मणिधर उस पर मर मिटा था। वह उस समय बाह्य संसार में नहीं रह गया था। यह सब देख पंडितजी खिसक गए। अब उस प्रकोष्ठ में केवल दो ही थे।

मणिधर ने मुक्ता का हाथ पकड़कर कहा, "आइए, खड़ी क्यों हैं। मेरे समीप बैठ जाइए।" मणिधर धृष्ट होता चला जा रहा था। मुक्ता झिझक रही थी, परंतु फिर भी

मौन थी। मणिधर ने कहा - "क्या पंडितजी ने इस प्रकार आतिथ्य सत्कार करना सिखलाया है कि घर पर कोई पाहुन आवे और घरवाला चुपचाप खड़ा रहे... शुभे, मेरे समीप बैठ जाइए।" प्रेम की विद्युत कला दोनों के शरीर में प्रवेश कर चुकी थी। मुक्ता इस बार कुछ न बोली। वह मंत्र-मुग्ध-सी मणि के पीछे-पीछे चली आई तथा उससे कुछ हटकर पलंग पर बैठ गई। "आपका शुभ नाम?" मणि ने जरा मुक्ता के निकट आते हुए कहा। "मुक्ता।" लजीली मुक्ता ने धीमे स्वर में कहा।

बातों का प्रवाह बढ़ा, धीरे-धीरे समस्त हिचक जाती रही। और... और !! थोड़ी देर के पश्चात मुक्ता नीरस हो गई, उसकी आब उतर गई थी।

"हिजाबे नौं उरुमा रहबरे शौहर नबी मानद, अगर मानद शबे-मानद शबे दीगर नबीं मानद।"

हिचक खुल गई थी। मणि और मुक्ता का प्रेम क्रमशः बढ़ने लगा था। मणि मिलिंद था, पुष्प पर उसका प्रेम तभी ही ठहर सकता है, जब तक उसमें मद है, परंतु मुक्ता का प्रेम निर्मल और निष्कलंक था। वह पाप की सरिता को पवित्र प्रेम की गंगा समझकर बेरोक-टोक बहती ही चली जा रही थी। अचानक ठोकर लगी। उसके नेत्र खुल गए। एक दिन उसने तथा समस्त संसार ने देखा कि वह गर्भ से थी।

समाज में हलचल मच गई। शंकरलाल जी की नाक तो कट ही गई। वह किसी को मुँह दिखाने के योग्य न रह गए थे - ऐसा ही लोगों का विचार था। अस्तु। जाति-बिरादरी जुटी, पंच-सरपंच आए। पंचायत का कार्य आरंभ हुआ। मुक्ता के बयान लिए गए। उसने आँसुओं के बीच सिसकियों के साथ-साथ समाज के सामने संपूर्ण घटना आद्योपांत सुना डाली - पंडितजी का उसके भोले-भाले स्वच्छ हृदय में काम-वासना का बीजारोपण करना, तत्पश्चात उसका मणिधर से परिचय कराना आदि समस्त घटना उसने सुना डाली। पंडितजी ने गिड़गिड़ाते अपनी सफाई पेश की तथा मुक्ता से अपनी वृद्धावस्था पर तरस खाने की प्रार्थना की। परंतु मणिधर शांत भाव से बैठा रहा।

पंचों ने सलाह दी। बूढ़ों ने हाँ में हाँ मिला दिया। सरपंच महोदय ने अपना निर्णय सुना डाला। सारा दोष मुक्ता के माथे मढ़ा गया। वह जातिच्युत कर दी गई। रायबहादुर के पिता की भी वही राय थी, जो पंचों की थी। मणिधर और पंडितजी को सच्चरित्रता का सर्टिफिकेट दे निर्दोषी करार दे दिया गया। केवल 'अबला' मुक्ता ही दुख की धधकती हुई अग्नि में झुलसने के लिए छोड़ दी गई। अंत में अत्यंत कातर भाव से निस्सहाय मुक्ता ने सरपंच की दोहाई दी - उसके चरणों में गिर पड़ी। सरपंच घबराए। हाय, भ्रष्टा

ने उन्हें स्पर्श कर लिया था। क्रोधित हो उन्होंने उस गर्भिणी, निस्सहाय, आश्रय-हीना युवती को धक्के मार कर निकाल देने की अनुमति दे दी। उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए हिंदू समाज को वास्तव में पतन के खड्ड में गिराने वाले, नरराक्षस, खुशामदी टट्टू 'पीर बवर्ची, भिस्ती, खर' की कहावत को चरितार्थ करने वाले इस कलंक के सच्चे अपराधी पंडितजी तत्क्षण उठे, उसे धक्का मारकर निकालने ही वाले थे - अचानक आवाज आई - "ठहरो। अन्याय की सीमा भी परिमित होती है।

तुम लोगों ने उसका भी उल्लंघन कर डाला है।" लोगों ने नेत्र घुमाकर देखा, तो मणिधर उत्तेजित हो निश्चल भाव से खड़ा कह रहा था, "हिंदू समाज अंधा है, अत्याचारी है एवं उसके सर्वेसर्वा अर्थात हमारे 'माननीय' पंचगण अनपढ़ हैं, गँवार हैं, और मूर्ख हैं। जिन्हें खरे एवं खोटे, सत्य और असत्य की परख नहीं वह क्या तो न्याय कर सकते हैं और क्या जाति-उपकार? इसका वास्तविक अपराधी तो मैं हूँ। इसका दंड तो मुझे भोगना चाहिए। इस सुशील बाला का सतीत्व तो मैंने नष्ट किया है और मुझसे भी अधिक नीच है यह बगुला भगत बना हुआ नीच पंडित। इस दुराचारी ने अपने स्वार्थ के लिए न मालूम कितनी बालाओं का जीवन नष्ट कराया है - उन्हें पथभ्रष्ट कर दिया है। जिस आदरणीय दृष्टि से इस नीच को समाज में देखा जाता है वास्तव में यह नीच उसके योग्य नहीं, वरन यह नर पशु है, लोलुपी है, लंपट है। सिंह की खाल ओढ़े हुए तुच्छ गीदड़ है - रँगा सियार है।"

सब लोग मणिधर के ओजस्वी मुखमंडल को निहार रहे थे। मणिधर अब मुक्ता को संबोधित कर कहने लगा, "मैंने भी पाप किया है। समाज द्वारा दंडित होने का वास्तविक अधिकारी मैं हूँ। मैं भी समाज एवं लक्ष्मी का परित्याग कर तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम्हें सर्वदा अपनी धर्मपत्नी मानता हुआ अपने इस घोर पाप का प्रायश्चित करूँगा। भद्रे, चलो अब इस अन्यायी एवं नीच समाज में एक क्षण भी रहना मुझे पसंद नहीं... चलो।" मणिधर मुक्ता का कर पकड़कर एक ओर चल दिया, और जनता जादूगर के अचरज भरे तमाशे की नाई इस दृश्य को देखती रह गई।